Review of Literature

ISSN: 2347-2723 Impact Factor : 2.0260(UIF) Volume - 4 | Issue - 5 | December - 2016

वाणी के जादूगर और क्रांतिकारी कवि कबीर का समाज सुधारक रूप

Dr. Bhagirath
Assistant Professor in Hindi, UCDL Branch,
Ch. Devi Lal University, Sirsa (Haryana)

प्रास्ताविक –

कबीरदास जी भक्तिकाल के निर्गुण काव्यधारा के प्रमुख कवि माने जाते हैं उनका व्यक्तित्व ऐसा व्यक्तित्व था जिसमें पूर्ण निर्भीकता के साथ अनीति, अत्याचार और आडम्बरों का विरोध कर मानव मात्र से प्रेम का संदेश दिया है। उनका धर्म कोई 'विशेष धर्म' नहीं था। कबीर एक सजग कवि थे उन्होंने अपने युग का गहन अध्ययन किया और उस युग की समस्याओं को अपने काव्य में स्थान दिया। सामाजिक समानता के पक्षधर इस महासंत ने, विरूवमानस का नैसर्गिक स्वच्छता से साक्षात्कार कराया। सामाजिक विषमताओं की गहनानुभमति के ज्वालामुखी में जब–जब भी किसी महात्मा या स्वनुभूत ज्ञानी के स्वर तपे, तब–तब वो लावा बनकर लोक चेतना के मुखर स्वर बने। कबीर अपने समय के तो युगद्रष्टा और युगसृष्टा थे ही साथ ही आने वाले युग के लिए भी चेतना की मशाल थे। उन्हेंने जीवन की सच्चाइयों का सामना किया। जनार्दन द्विवेदी जी ने कबीर को युगद्रष्टा, युगप्रवर्तक और क्रांतिकारी कहकर उनके गुणों का वर्णन कुछ ऐसे किया है–कबीर जी सच्चाई से टकराने वाले और अपने जमाने को सही रास्ता दिखाने वाले युगद्रष्टा, युग–प्रवर्तक और क्रांतिकारी थे। निष्ठा, समर्पण और संकल्प के गुण या तो क्रांतिकारी में होते है या फिर भक्त में। संयोग से कबीर में ये सभी प्रकार के गुण थे। वे अपने राम के प्रति समर्पण के समय वे प्रेम की अनंत गहराई में उतरते हैं और अपने समय के विद्रूप को उजागर करते समय, समाज को रास्ता

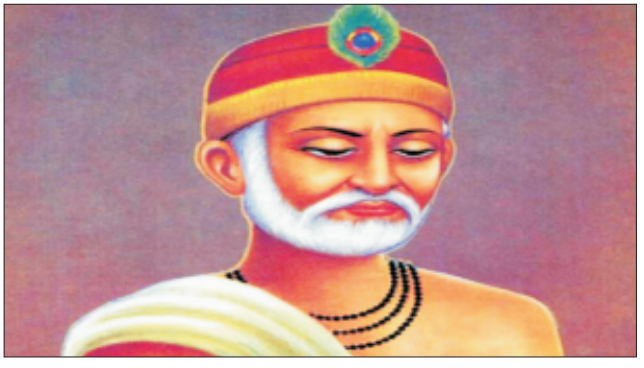

दिखाते समय वे साहस और विद्रोह की चरम ऊँचाइयों पर पहुँच जाते हैं।[1]

कबीर जी न अपने समय में फैली अनेक सामाजिक कुरीतियों का विरोध किया वे हर प्रकार की कुरीति का मुकाबला करते है और फिर खण्डन भी करते है। कबीरदास जी ने स्थान–स्थान पर वैष्णों धर्म की प्रसंशा की है तब भी उन्होंने वैष्णव समाज में फैली हुई विभिन्न प्रकार की बुराइयों जैसे–मूर्ति पूजा, जाति–पाति, ऊँच–नीच की भावना का विरोध किया हैं। कबीरदास ने जहां अपने समकालीन अन्य धार्मिक सम्प्रदायों की आलोचना की हैं, वहां उन्होंने तत्कालीन शासकों के मजहब के बाह्याडम्बरों का तीव्र विरोध किया हैं। उन्होंने सामाजिक आचरण को सहज आचार–संहिता दी। धर्म की प्रमुखता, प्रभु स्मरण में स्पष्टता, स्वाभविकता जीवन शैली, द्वैत–भावरहित प्रकृति को ऐकेश्वरवादोन्मुखी बताया। अनुभूति को तीव्रता का ये आलम कि तत्कालीन सत्तासीन बाहुबलियों को धर्म में भी किसी प्रकार का कोई आडम्बर दिखाई दिया तो उसकी व्यर्थता को पूरी ताकत सक जनसाधारण के सामने कह दिया। एक ओर मुसलमानें की पद्धति के लिए उन्होंने कहा–

मुल्ला मुनारे क्या चढ़हि साँई न बहरा होई।
जां कारन तूँ बांग देहि दिल ही भीतरि जोई।।[2]

तो दूसरी ओर हिंदुओं को भी खरी–खरी सुना दी–

केसौं कहाँ बिगाड़िया, जे मूँडै सौ बार।
मन को काहि न मूँडिए, जामै विषै बिकार।।[3]

महात्मा कबीर किसी भी समाज में फैली जीव हिंसा के कट्टर विरोधी थे। जीव हिंसा न करने और मांसाहार का निषेध करने के पीछे कबीर का महत्त्वपूर्ण तर्क है। वे मानते हैं कि दया, अहिंसा और प्रेम तीनों का मार्ग एक है, हम किसी भी तरह की तृष्णा, लालसा पूरी करने के लिए हिंसा करेंगे तो तृष्णा और हिंसा का जन्म होगा। भक्त कबीर का उद्भव भारतीय समाज में नहीं, विश्वफलक पर भी एक कल्याणकारी व्यक्तित्व के रूप में हुआ है। भक्त कबीर ने न केवल अपने युग को सुधारने का कार्य किया बल्कि आने वाले समय का पूर्वाभास भी कर लिया था। लौकिक चरित्र को अलौकित कैनवास में उबारकर देखने का साहस भक्त कबीर ने दिया हैं। मान मन को स्वस्थ, उदात्त और संपूर्णत्व में ढालने का कार्य प्रकितदिन सूर्योदय के साथ होता है। यही भक्त कबीर आज भी प्रासंगिकता का सूचक है। मानसिक शुद्धि बोधन और संबोधन दिशा स्पष्ट करता है। भक्त कबीर की दृष्टि में स्वाभाविक, प्राकृतिक जीवन ही उत्तम हैं, जिसमें संतोष, क्षमा, दया, धैर्य और सहयोग हैं।

कबीरदास जी जीवन की मूल समस्याओं पर मौलिक रूप से विचार करके उनका समाधान भी बताते हैं। इनके काव्य जीवन के विभिन्न पक्षों का सजीवन चित्रण हुआ है। उन्होंनें सत्य आचरण के विरोध करने वालों को फटकार सीधे रास्ते पर लाने का प्रयत्न किया है। अतः सांसारिक विषमता, आडम्बर और भेदभाव के विरोध में संत कबीर सरस प्रेममय जीवन का संदेश देते है। उनकी यह सोच उदात्त है, महान है, आर कबीर जैसा युग चेतना समाज सुधारक कोई अन्य नहीं।

किसी भी साहित्यकार की भाषा ही उसके साहित्य की पहचान होती है। कबीर वाणी के जादूगर थे। कबीर की भाषा के संबन्ध में भी एक मत नहीं। इसका कारण यह है कि इनकी भाषा का कोई एक रूप नहीं है। भाषिक विविधता का महत्पूर्ण कारण है कि कबीर संत थे, फक्कड़ थे, मनमौजी थे, जिधर मन आया चल पड़े। इसी कारण इनकी भाषा सधुक्कड़ी बन गई। डॉ. श्याम सुन्दर दास ने इनकी भाषा को– "पंचमेल खिचड़" कहां

Volume - 4 | Issue - 5 | December - 2016

हैं। कबीर मध्ययुगीन आदि कवि है। मध्ययुग में भाषा न तो परिमार्जित थी और न ही सुसंस्कृत थी। हिंन्दी साहित्य के इतिहास में वीरगाथा काल की समाप्ति पर, मध्यकाल का आरम्भ कबीरदास जी से होता है। डॉ0 श्यामसुंदर दास ने कबीरदास जी के बारे में लिखा है कि – "उस समय भाषा का रूप परिमार्जित और संस्कृत नहीं हुआ था, तिस पर कबीर दास जी स्वयं पढ़े–लिखे नहीं थे। उनमें कवित्व उतना नहीं था, जितनी भक्ति और भावुकता थी। उनकी अटपट वणी हृदय में चुभने वाली थी। सिद्धों, योगियों औश्र संतों सभी ने कथनी और करनी की एकरूपता पर आदि काल से ही बल दिया है। प्रत्येक धर्मज्ञ ने इसी बात पर बल दिया है कि– भ्रम और संशय का मल कारण है–कहना हुछ और करना कुछ। वर्तमान युग इसी रोग से ग्रसित है। आश्वासनों की वर्षा जिसमें से पानी की एक बूंद भी उभर कर नहीं आई, जन आक्रोश का कारण बनती है। यही स्थिति काव्य या साहित्य की है– जो लिखा जा रहा है, उसे जिया नहीं जा रहा हैं। इस आदर्श की भाषा कहा जा सकता है या भाषायी रोमांस। कबीर संगत को संबोधन करते हैं–

रहनी के मैदान में, कथनी आवैं जाय।
कथनी पीसै परसना, रहनी अमल कराय।।[4]

कबीर की वाणी में उसके दिल का दर्द अधिक है। उनकी एक–एक पंक्ति में तत्कालीन समाज, राजनीति, धर्म नीति व्यवस्था के प्रति आक्रोश मिश्रित दर्द की ही अभिव्यक्ति हैं। कबीर की वाणी में अक्ख्ड़ता, प्रखरता, ओज व पीड़ा सब गुण मिश्रित थे। इसी मिश्रण से उनकी वाणी को इतना प्रभावी बना दिया था। उनसे तो शासनतंत्र भी भय खाता था।

हम घर जाल्या आपणां, लिया मुराडा हाथि।
अब घर जालौ तासका, ज चलै हमारे साथि।[5]

सुखों से उनका कोई नाता नहीं था, राग से कोई प्रेम नहीं, वैराग्य के धारक कबीर अपने निरंतर चलायमान जीवन में सुख को धता बताते हैं–

कबीरा सुख को जाय था आगैं आया दुःख।
जाहि सुख घरि आपणै, हम जाणों अरू दुःख।।[6]

कबीर वाणी के अद्वितीय जादूगर थे। उन्होंने प्रेम की भाषा का भी प्रयोग किया है। निरक्षर होते हुए भी उन्होंने साक्षरों से बढ़कर कहा हैं। वस्तुतः कबीर प्रेम, साहस, दर्द और सहानुभूति के कवि थे। संत तो वे थे ही। इसी संत स्वभाव के कारण उन्होंने–

तननाँ बुनना तज्या कबीर, राँम नाँम लिखि लिया शरीर।।[7]

कबीर की वाणी में ज्ञान, विशिष्ट ज्ञान, विचार, दर्शन, रहस्य के अद्वितीय भाव बोध उभरते हैं जो अनायास ही वैचारिक अनल और गरल का ही शाब्दिक रूपांतरण है उनकी साखी, सबद और रमैणी में। डॉ0 रमेशचन्द्र मिश्र कबीर में निरंतर एक आग सुलगती हुई पाते हैं– "इधर कबीर वाणी पढ़ते हुए निरंतर यह महसूस होता रहा है कि कबीर में भी निरंतर एक आग जीवंत रही है जो उनके हृदयकाश को निरंतर ज्योतित एवं प्रदीप्त बनाये रखने में समर्थ रही हैं।[8]

कबीर पर समय–समय पर विद्वानों ने अपनी टिप्पणियां दी है। आचार्य विवेकादास ने उन्हें सामाजिक और सांस्कृतिक चेतना का सबसे बड़ा मसीहा माना हैं। कबीर की अनुभूति में सारग्रहणि क्षमता हैं। तत्कालीन सामाजिक मान्यताओं, विशेषताओं व संपूर्ण सामाजिक जीवन की भूमिका पंडितों और मौलवियों के हाथ में ही थी। जिस परम्परा, विधि या शैली को उन्होंने धर्म की संज्ञा दी, वे ही सामाजिक दुर्दशा का कारण बनी। इसलिए इन सबसे क्षुब्ध होकर बड़े क्षोभ भरे शब्दों में कबीर ने साफ कहा–

पंडित मुल्ला जो लिख दिया, छांडि चले हम, कुछ न लिया।[9]

कबीर की शब्द की शक्ति असीम है। जिस शक्ति से शब्द के अर्थ का बोध होता हे, उसे शब्द शक्ति कहते हैं। यह एक प्रकार का शब्द और अर्थ का संबंध हैं। वाणी की प्रगाढ़ता, शब्दों में अपभ्रंश और अभिव्यक्ति में सपाटबयानी कबीर की अपनी विशेषता है। साधारण जन के निकट इनकी बात स्मृति बन जाती हैं। इकतारे पर गाते–गाते, जनसाधारण को पता ही नहीं लगता कि कब रात बीत गई। कथा–कीर्तन इनकी प्रेषण क्षमता के आज भी जीवन–स्त्रोत हैं। साहित्यकार अपने साहित्य को सफल बनाने के लिए शैलियों का प्रयोग करते है कबीरदास के दोहों में भी आत्मकथात्मक, चित्रात्मक, भाषात्मक, प्रतीकात्मक, वर्णनात्मक शैलियों का प्रयोग किया है।

कबीर स्वयं कर्मठ, कर्मयोगी, श्रमजीवी व स्वाभिमानी संत थे। अपने काम में क्या शर्म।, इसलिए करघा उठाया, रेजा बुना और उसी पर गीत गाता, कगीर, जुलाहा कबीर, निजभरण पोषण के लिये कहीं नहीं गया। अकर्मयता से कबीर को चिढ़ थी–'कबीर सूता क्या करे, सूता होई अकाज। ब्रह्मा का आसण खिस्या, सुणत काल की गाज।"[10] प्रश्नात्मक शैली का प्रयोग भी वे यथा स्थान करते है। कबीरदास जी ने चलते–फिरते अपने दोहों की रचना की हैं। अतः इनके दोहों में दैनिक व्यवहार की वस्तुओं से संबन्धित, प्राकृतिक पदार्थों, परिजनों, सामाजिक जीवन ओर परभाषिक शब्दावली से प्रतीकों का प्रयोग खुलकर हुआ है। साथ ही बिंबों का प्रयोग खुलकर हुआ हैं। साथ ही बिंबों का प्रयोग भी प्रभावकारी है। वे उचित स्थान पर सटीक बिंब का समायोजन कबीर अनायास ही कर देते है। इसी कारण उनकी भाषा की चित्रात्मकता हृदयस्पर्शी हैं।

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि कबीर ने जीवन और जगत को जितना निकट से कबीर ने देखा वह अनिर्वचनीय है। असहाय, आशक्त और उपेक्षित के मन में आशा का संचार कर कबीर ने समाज पर कृपा और उपकार दोनों किए हैं। कबीर असाधारण अनुभति और अद्भुत अभिव्यक्ति के कवि है। स्पष्ट, सपाट रचनाएं भूतकाल में भी रचनाकारों को चुनौती देती आई हैं, वर्तमान में भी रही और भविष्य में भी देती रहेंगी।

1.कबीर की जिद, जनार्दन द्विवेदी, इन्द्रप्रस्थ भारती (कबीर विशेषांक), पृ0 196

2.कबीर ग्रंथावली, पृ0 196 (117)
3.कबीर ग्रंथावली, पृ0 36 (12)
4.कबीर ग्रंथावली संपादक डॉ0 श्यामसुन्दर दास, नागरी प्रचारणी सभा, सं0 10 भूमिका, पृ0 6
5.कबीर ग्रंथावली, पृ0 53 (13)
6.कबीर ग्रंथावली, पृ0 15 (6)
7.कबीर ग्रंथावली, पृ0 74 (21)
8.(आग्नेय कबीर पृ0 इंद्रप्रस्थ भारती पृ0 131)
9. इन्द्रप्रस्थ भारती, पृ0 190
10.कबीर ग्रंथावली, पृ0 40